ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3591422

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

कला और समाज का अर्न्तसम्बन्ध

आशुतोष कुमार सोनिया [1]
[1] कला शिक्षक, इलाहाबाद

शोध-सारांश
चित्रकला समाज के उद्देश्य पूर्ति के लिए निर्मित की जाती है। कलाएँ सामाजिक तथ्यों के प्रति सदैव उत्तरदायी रही हैं तथा इनमें समाज की इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है। कलाओं में चित्रकला (कला) का भाव छिपा रहता है। यह सामाजिक बन्धन में बंधे होने के पश्चात् भी नियमों से स्वतन्त्र होती है। समाज की संस्कृति का एक अंग कला है, जिसको समाज परम्परा के रूप में क्रमशः आगे बढ़ाता रहता है और कला सदैव जीवित रहती है।

मुख्य शब्द – कला, समाज, अर्न्तसम्बन्ध

Cite This Article: आशुतोष कुमार सोनिया. (2019). "कला और समाज का अर्न्तसम्बन्ध." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(11SE), 200-203. https://doi.org/10.5281/zenodo.3591422.

कलाकार वाह्य जगत के रूप-स्वरूप, गतिविधियों एवं समाज की भावनाओं से सम्बन्ध बनाकर ही सृजन किया करता है वह अपने सृजन में सामाजिक भावनाओं का मानव-वृत्तियों से सीधा सम्बन्ध रखता है। कलात्मक सृजन में इन्ही भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है, परिणाम स्वरूप कला का रूप भी विश्वव्यापी होता है। कलाकार की प्रतिभा, उसकी आत्मशक्ति एवं उसके कलात्मक तत्व, कला के रूप में समाज के स्वरूप और भावनाओं के साथ सामंजस्य जोड़कर, उसको व्यापक रूप प्रदान करते हैं। कला के अधिकांश विषय तत्कालीन समाज की समस्यायें ही होती है, इस उद्देश्य से किये गये सृजन में व्यक्तित्व गौण रूप ले लेता है ओर समाज की आवश्यकताओं का प्रतिबिम्ब उसके सृजन मे स्पष्ट झलकता रहता है। कलाकार ऐसी स्थिति में उद्देश्य अभिव्यक्ति के माध्यम से आत्मशान्ति प्राप्त करना चाहता है। इस स्थिति में उद्देश्य के प्राप्ति के लिए स्वयं अपना मार्ग चुनता है, लेकिन समाज से कभी अलग नहीं रह सकता है। किन्तु तकनीकी सिद्धान्तों के समक्ष दर्शक के आनन्द और आत्मशक्ति का लक्ष्य रहता है। सिद्धान्त के आधार पर पहली स्थिति में सृजित कला का रूप शुद्ध और मौलिक होता है तथा दूसरी स्थिति में लक्ष्यपूर्ति के लिए कला का रूप व्यावहारिक एवं मौलिकता उससे दूर हो जाती है। फलस्वरूप अनेकानेक तकनीकों को ग्रहण करना तथा उन्हें शिल्प के रूप में प्रस्तुत करना होता है।

इस प्रकार कला की उत्पत्ति और कलाकार के क्रियात्मक पक्ष दोनों को ही समाज प्रेरणा देता है। कला का विकास सांस्कृतिक विकास के साथ जुड़ा होता है। सामाजिक विकास के इतिहास का अवलोकन करें, तो पता चलता है कि जैसे समाज ने विकास किया है वैसे ही संस्कृति हुई क्योंकि संस्कृति का एक अंग कला भी

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3591422

है। इसी अनुसार सामाजिक परिस्थितियाँ बदलती रहती है और कला में बदलाव होता रहता है। इस प्रकार कला एक सामाजिक उत्पत्ति है। मार्क्सवादी विचारक मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन कला के रूप-परिवर्तन को प्रभावित करते हैं, अतः स्पष्ट है कि कला और समाज एक-दूसरे से जुड़े हैं। भारतीय समाज के लोग परम्परावादी होते हैं। धर्म इसका मूलतत्व है, जिसका सामाजिक नियंत्रण आधार है। धर्म और कला के विकास के विषय में कहा जाता है कि ये एक साथ विकसित हुए हैं। इसलिए कला सामाजिक नियंत्रण में सहयोगी मानी जाती है। सामाजिक पद्धति एवं संस्कृति अपने ढंग से कला रूपों को पनपने का अवसर प्रदान करती है। आधुनिकवाद और व्यक्तिवाद, संगठन और स्वतन्त्रता सामाजिक-सिद्धान्तों के रूप में कला अपनी छाप छोड़ती है। प्रकृति एवं मानव की उत्पत्ति से सम्बन्धित पौराणिक आख्यान, देवताख्यान, वीरो, पूर्वजों व कबीलों से सम्बन्धित कथाओं एवं व्यक्तिगत मनोभावों को व्यक्त करने वाले गीतों आदि से समाज के विकास की कहानी जुड़ी है।

सामाजिक परिस्थितियाँ कलाकार को विकसित कलाशैली, विचार, भाव, समस्यायें आदि विषयवस्तु एवं कला-सृजन के उपकरण आदि समाग्री प्रदान करती हैं। मानव-समाज में रहकर मनुष्य के मन में जो कुण्ठायें उत्पन्न हो जाती है, उनकी अभिव्यक्ति कला में स्थान पाती है इस प्रकार कला एवं समाज में दृढ़ सम्बन्ध हो जाता है। सांस्कृतिक परम्पराओं और सामाजिक संदर्भों में कला के सभी स्वरूपों में समसामयिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि का मूल्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं, जैसे- भारतीय लघु चित्रों में इनके चित्रणकाल की सांस्कृतिक परम्परायें तीज-त्यौहार, उत्सव आदि सामाजिक परिवेश भी दिखाई देता है। इसी प्रकार यूरोप के दादावाद, पाप-आर्ट पुनर्जागरण काल की कलाओं में स्पष्ट दिखाई देता है, सांस्कृतिक संदर्भों को प्रतिबिम्बित करता है जो वर्तमान की संस्कृति एवं सामाजिक मूल्यों को प्रतिबिम्बत कर रहा है। समय-समय पर कलाकार अपनी अभिव्यक्ति के जरिये जनमानस की भावनाओं को सामाजिक एवं राजनैतिक उद्देश्यों के लिए जागृत करता है। ऐसे समय में कलाकारों ने कला के जरिये जन-भावनाओं को जागृत एवं प्रोत्साहित किया है तथा वर्तमान में भी ऐसा किया जा रहा है।

कलाकार अपने व्यक्तित्व से होता है। किसी कृति को हम श्रेष्ठ कलाकृति तभी कह सकते हैं जब समाज में अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न कर सके। सामाजिक पक्ष का विचार करने वाले विद्वानों ने दो उत्तर दिये : एक तो नैतिकता के नाते कलाकार अपने अनुभव को महत्वपूर्ण मानता है उसमें दूसरों को भी भागीदार बनना चाहता है। कलाकार आजीविका के लिए कलाकृतियों की रचना करता है इस दृष्टि से वह समाज का सेवक या वस्तु का विक्रेता होता है। यह दोनों बात अकलात्मक है क्योंकि जो कलाकार द्वारा समाज को दी जाती है वह कलाकृति है, कलाकार का कलात्मक अनुभव नहीं है। अनुभव एक प्रकार की विशिष्ट मानसिक अनुभव है जो कलाकार के मन की अभिव्यक्ति मानते है।

कलाओं में सामाजिक उत्थान, पतन तथा प्रगति की झलक या छवि पूर्ण रूप से दिखाता है, कलाओं में सामाजिक आनन्द, दुःख, पीड़ा, उत्पीड़न, ऐश्वर्य, सामर्थ्य और समृद्धि का सविस्तार प्रदर्शन दिखता है। कलाकार अपने जीवन तथा समाज और प्रकृति के मध्य अपने गहन अध्ययन और अनुभव के आधार पर ही अपनी कलाकृतियों या कला के द्वारा सच्चाई, झूठ, सामाजिक 'सु' तथा 'कु' की रोचक ढंग से अभिव्यक्त करता है। जिस कलाकार की सामाजिक ज्ञान और प्रकृति का ज्ञान जितना अधिक होगा और जितनी सच्ची अनुभूति होगी उतनी ही सशक्त और प्रभावशाली कृतियों की रचना करता है।

समाज के स्तरों, संगठनों तथा परिस्थितियों में सदैव ही राजनैतिक या प्राकृतिक कारणों से बदलाव होता है। कला परम्परा में इन सामाजिक और राजनैतिक उतार-चढ़ावों तथा बदलाव की झाँकी दिखाई देती है। प्राचीन काल से सुख और शान्ति के समय में वैष्णव या शैव धर्म से अनुप्राणित समाज की कला भगवत् धर्म से सम्बन्धित

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3591422

कलाकृतियों से परिपूर्ण होती थी। जिसका साक्षी अजंता, एलोरा, त्रिपतिपुरम तथा बादामी आदि की भित्ति चित्रकारी और मूर्तिकला है। इसी प्रकार मुगल-शासन काल में भी मुसलमान धर्म में चित्रकला या अन्य कलाओं को धर्म निषिद्ध माना गया। मुगल दरबारों में दरबारी समाज की कला विकास हुआ मुगल बादशाहों, शाहजादों, बेगमों, सरदारों, मनसवदारों, फौजदारों, सूबेदारी, तथा अहलकारों (कर्मचारियों), सिपाहियों अंगरक्षकों आदि के चित्र अत्यधिक बनाये गये या बादशाहों के प्रिय लड़ाई, फौजी चढ़ाइयों, आखेट, जन्म-उत्सवों के जैसों के चित्र बनाये गये।

इसके विपरीत राजपूत शासकों के राज्यों में सामाजिक अवस्था भिन्न थी। राजा और प्रजा दोनों धार्मिक भावना से ओत-प्रोत थे। समाज में वैष्णव धर्म तथा जैनधर्म का बोलबाला था। सचित्र जैन पोथियों या जैन पट चित्र इस बात के प्रमाण है। दूसरी ओर ब्रह्मा, विष्णु, महेश का समाज में महान आदर और सम्मान था। इन तीनों देवताओं की छवियाँ या पौराणिक आधार पर कथायें भी चित्रमालाओं के रूप में प्रस्तुत है। इसके पश्चात् आंग्ल काल के आने पर जनजीवन के चित्र भी स्वतंत्र रूप से बनाये गये। देश के प्राचीन गौरवमयी इतिहास को भी दर्शाया गया। जैसे समाज में स्वतन्त्रता की लहर उठने के साथ झाँसी की रानी, शिवाजी, और फिर गाँधी तथा सुभाष के चित्र बनाये गये। इसी प्रकार यूरोप की चित्रकला और मूर्तिकला में सोलहवीं शताब्दी तक धर्म का बोलबाला रहा ईसाई धर्म के चित्र अधिक बनाये गये। कालान्तर के अठारहवीं शताब्दी तक राजशाही और दरबार का समाज पर आतंक छाया रहा। परन्तु कालान्तर में जनविद्रोह, जन आन्दोलन, गणतंत्र की भावना और जन समाज पर आधारित कृतियाँ बनाई जाने लगी।

कलाकार के कार्य का एक पक्ष यह भी है कि वह अपना अनुभव समाज तक पहुँचाता है। इसके हेतु भौतिक इन्द्रिय-बोध-गम्य साधनों की आवश्यकता होती है। कला को ऐसी अभिव्यक्ति माना जाता है जिसका सम्बन्ध कलाकार के अपने अभिव्यक्ति से होती है। किसी कृति को श्रेष्ठ कलाकृति तभी कहते हैं जब वह समाज में अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न कर सके। कला को सामाजिक स्वरूप भी कहा गया। सभी भावनायें और इच्छाएँ अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। इन इच्छाओं से एक ओर स्वप्न और दूसरी ओर कलाकृतियों का उद्‌भव होता है। इन दोनों में अन्तर भी है। स्वप्न व्यक्तिगत होती है तथा कला सामाजिक होती है, कला सृजनात्मक है, स्वप्न नहीं है, कला में भ्रम होता है, स्वप्न में नहीं स्वप्नगत प्रवृत्ति अन्धी होती है, कला जागरूक होती है, स्वप्न की आकृतियाँ प्रवृत्तियों के आधार पर चलती है। किन्तु कला की आकृतियाँ समाज के मार्ग पर निश्चित होता है। अतः कला समाज के लिए परम् आवश्यक है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकता को पूर्ण करने का उचित मार्ग दर्शाती है। कलाकार के इसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि हमारे लिए समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है।

कला का अस्तित्व सामाजिक है। जिस प्रकार सामाजिक विकास की परिस्थितियाँ होती है वैसा ही समाज की विचारधारा बनती है। सामाजिक विकास तथा सामाजिक आन्दोलनों के प्रत्येक चरण के साथ कला के विकास का प्रत्येक चरण सम्बन्धित रहा है। प्रागैतिहासिक मानव की भावनाएँ उसकी आवश्यकताओं के अनुसार ही थी अतः तत्कालीन गुफाचित्रों में तथा आदिम समाजों के गीत नृत्यों में उन्हीं की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार हर देश या समाज की आन्तरिक अवस्था, परिवर्तन तथा नवीन दिशा की ओर प्रगति का पूर्णरूप से परिचय चित्रों तथा मूर्तियों या अन्य कलाकृतियों में प्राप्त हो जाता है। अतः कला समाज की संगिनी है जो सामाजिक गतिवधियों का सही लेखा-जोखा संजोये रहती है। कला समाज का सच्चा प्रतिरूप और दर्पण है। जिसके द्वारा कला और समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों ही एक दूसरे के लिए पूरक का काम करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3591422

सन्दर्भ

[1] कला निबन्ध-अशोक, प्रकाशक-संजय पब्लिकेशन आगरा।
[2] कला सिद्धान्त और परम्परा, (भारतीय चित्रकला की सैद्धान्तिक विवेचना)- डा सरन बिहारी लाल सक्सेना, डा0 श्रीमती सुधा सरन, डा0 आनन्द लखटकिया। प्रकाशक- प्रकाश बुक डिपो बड़ा बाजार, बरेली।
[3] कला दर्शन-प्रकाश वीरेश्वर, डा0 नूपुर शर्मा- प्रकाशक-कृष्णा प्रकाशन मिडिया (प्रा0) लि0 मेरठ उ0प्र0।
[4] देशज कला- डा0 हृदय गुप्त, प्रकाशक-राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
[5] कला एवं तकनीक-डा0 अविनाश बहादुर वर्मा, अमित वर्मा- प्रकाशक- प्रकाश डिपो बरेली।
[6] कला के नवीन स्वरूप-नरेन्द्र सिंह यादव, अजय यादव- प्रकाशक राजस्थान, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।

*Corresponding author.
E-mail address: ashuraje.raje@ gmail.com